गली नंबर दो

हिन्दी ADDA

अंजू शर्मा

गली नंबर दो

"पुत्तर छेत्ती कर, वेख, चा ठंडी होंदी पई ए।"

बीजी की तेज आवाज से उसकी तंद्र भंग हुई। रंग में ब्रश डुबोते हाथ थम गए। पिछले एक घंटे में यह पहला मौका था, जब भूपी ने मूर्ति, रंग और ब्रश के अलावा कही नजर डाली थी। चाय सचमुच ठंडी हो चली थी। उसने एक साँस में चाय गले से नीचे उतारते हुए मूर्तियों पर एक भरपूर नजर डाली। दीवाली से पहले उसे तीन आर्डर पूरे करने थे। लक्ष्मी-गणेश की मूर्तियों से घिरा भूपी दूर बिजली के तार पर अठखेलियाँ करते पक्षियों को देखने लगा। हमेशा की तरह आज भी एक आवारा-सा ख्याल सोच के वृक्ष की फुनगी पर पैर जमाने लगा, आखिरकार ये पक्षी इतनी ऊँचाई पर क्यों बैठे रहते हैं?

'ऊँचाई' दुनिया का सबसे मनहूस शब्द था और ऊँचाइयाँ उसे हमेशा डर की एक ऐसी परछाई में ला खड़ा करती थी कि जिसके आगे उसका व्यक्तित्व छोटा, बहुत छोटा हो जाता था। दूर आसमान में सिंदूरी रंग फैलने लगा था जिसकी रंगत धीरे-धीरे भूपी के रंगीन हाथों सी होती चली गई।

रंगों का चितेरा भूपी उर्फ भूपिंदर, जस्सो मासी का छोटा बेटा है और हमारी इस कहानी का नायक भी है। यूँ कहने के लिए उसमें नायक जैसे कोई विशेषता नहीं थी जिसे रेखांकित किया जाए। अगर सिर्फ उसकी दुनिया ही हमारी कहानी का दायरा हो तो इस खामोश कहानी में न कोई आवाज होगी और न ही संवादों के लिए कोई गुंजाइश रहेगी। यहाँ भूपी की इस रंगीन कायनात में इधर-उधर, तमाम रंग जरूर बिखरे हैं पर इंद्रधनुषी रंगों से सजी ये कहानी इन सब रंगों के सम्मिश्रण से मिलकर बनी है यानि वह रंग जो बेरंग है। तो कहानी भूपी से शुरू होती है, भूपी की उम्र रही होगी लगभग उनतीस साल, साफ रंगत जो हमेशा बेतरतीब दाढ़ी के पीछे छिपी रहती थी, औसत से कुछ कम, नहीं कुछ और कम लंबाई, इतनी कम कि देखते ही लोगों के चेहरों पर मुस्कान दौड़ जाती थी। पढ़ने-लिखने में न तो मन ही लगा और न ही घर के हालात ऐसे थे कि वह ज्यादा पढ़ पाता। कुल जमा पाँच जमात की पढ़ाई की थी पर मन तो सदा रंगों में रमता था उसका! पान, बीड़ी, सिगरेट, तंबाखू, शराब जैसा कोई ऐब उसे छू भी नहीं गया था। हाँ, अगर कोई व्यसन था तो बस आड़ी-तिरछी लकीरों का साथ और रंगों से बेहिसाब मोहब्बत जो शायद उसके साथ ही जन्मी थी और साथ ही जन्मी थी एक लंबी खामोशी जो हर सूँ उसे घेरे रहती थी। उसका कोई साथ या मीत था तो उसके सपने, जो दुर्भाग्य से सपने कम दुस्वप्न ज्यादा थे। भूपी की खामोश दुनिया अक्सर उन दुस्वप्नों की काली, सर्द, अकेली और भयावह गोद में जीवंत हो जाती। ये सपने अब उसकी आदत में शुमार हो गए थे और इनका साथ उसे भाने लगा था।

कम ही मौके आए होंगे जब उसे किसी ने बोलते सुना था। यकीनन मुहल्ले से गाहे-बगाहे गुजरने वालों को यह मुगालता रहता होगा कि वह बोल-सुन नहीं सकता। कहते हैं जब होंठ चुप रहते हैं तो आँखें जबान के सारे फर्ज अदा करने लगती हैं पर भूपी की तो जैसे आँखें बस वही देखना चाहती थी जिसका संबंध उसके काम से हो और आँखों के बोलने जैसी सारी कहावतें बस कहावतें ही तो रह गई थी। पता नहीं ये दुस्वप्नों के नीद पर अतिक्रमण का असर था या कुछ और कि ये आँखें अक्सर बेजान, शुष्क और थकी हुई रहा करती थी। यह सहज ही देखा जा सकता था कि उन तमाम काली रातों की सारी कालिमा, सारा अँधेरा, सारा डर और सारा अकेलापन इन

भावहीन आँखों के नीचे अपने गहरे निशान छोड़ गया था, हालाँकि इनकी इबारत पढ़ पाना किसी के लिए भी संभव नहीं था, फैक्टरी में दिन भर मेहनत कर रात में गहरी नींद लेने वाली बीजी भी इन निशानों की थाह कब ले पाई थी।

जस्सो मासी उर्फ बीजी उर्फ जसवंत कौर एक नेक, मिलनसार और खुशमिजाज औरत थी जो ज्यादा सोचने में यकीन नहीं रखती थी या उन्ही के शब्दों में कह लीजिए 'जिंदड़ी ने मौका ही कदो दित्ता' (जिंदगी ने मौका ही कब दिया)। गेंहुआ रंग, छोटा कद, स्थूल शरीर, खिचड़ी बाल और कनपटी पर किसी हल्के से रंग की चुन्नी के बाहर, 'मैं भी हूँ' अंदाज में झूलती एक सफेद लट, चौड़े पायंचे वाली सलवार-कमीज और चेहरे पर मुस्कान! मुल्क के बँटवारे ने सब लील लिया था, बँटवारे के दंश को सीने में छुपाए, काफी अरसा हुआ तरुणाई की उम्र में पति के साथ पंजाब से यहाँ आकर बसी थी। जाने वो दिल था, जिगर था या जान थी जो वहाँ छूट गया था, लोग कहते हैं वो अब पाकिस्तान था। बहुत समय लगा ये मानने में कि वो मुल्क अब गैर है, कि अब वो हमारा नहीं रहा, कि उसे अब अपना कहना खामखयाली है। और देखिए न उनकी उजड़ी गृहस्थी और टूटे दिल को उस दिल्ली में ठिकाना मिला जो खुद भी न जाने कितनी बार उजड़ी और बसी थी। पर दिल्ली जब हर बार उजड़ कर बस गई तो जस्सो मासी की नई-नई गृहस्थी भला कब तक उजड़ने का दर्द सँजोती रहती। दिल्ली ने ही उनकी तरुणाई की वे जाग-जाग कर काटी रातें देखी, तिनके-तिनके जोड़ कर जमाया घौंसला देखा और दिल्ली ही असमय पति के बीमार हो जाने पर दो बच्चों के साथ हालात की चक्की में पिसती, उस जूझती फिर भी सदा मुस्कुराती माँ के संघर्षों की मौन साक्षी बनी। इन मुश्किलों ने उन्हें जुझारू तो बना ही दिया था, साथ ही वे छोटी-छोटी बातों को दिल से लगाने को फिजूल मानने लगी थी। यूँ भी जिंदगी ने उन्हें सिखाया था जब मुश्किलें कम न हो तो उनसे दोस्ती कर ली जाए, उन्हें गले लगा लिया जाए।

यह एक निम्न-मध्यमवर्गीय लोगों का मोहल्ला था, जहाँ रहते हुए लोगों को न तो बीत गए सालों की संख्या याद थी और न ही एक दूसरे से कब रिश्ता बना यह भी याद रहता था। अपने छोटे-छोटे सुखों को महसूसते और पहाड़ जैसे दुखों से लड़ने को अपनी आदत में शुमार किए उन लोगों का बड़ा-सा परिवार थी यह गली, जिसे गली नंबर दो कहा जाता था। इन लोगों ने धर्म, जाति और क्षेत्रीयता जैसे तमाम आग्रहों से ऊपर उठकर एक नए पंथ की अघोषित, मौन स्थापना कर दी थी जिसे भाईचारा कहा जाता था, जो खून के रिश्तों से कही ऊपर था। कोई हालाँकि कई बार छोटी-छोटी बातों

पर झगड़ते ये लोग शाम को साथ मिलकर मन-मुटाव को साथ-साथ विदा कर देते थे। तो जस्सो मासी, जी हाँ लोग उन्हें इसी नाम से पुकारा करते थे, यूँ तो कहने को दो बेटों वाली थी पर बड़ा बेटा करमजीत उर्फ काके, बेटा कम अपने पूर्वजन्म के कुकर्मों का फल ज्यादा लगता था उन्हें। पिता की बीमारी और घर में कामकाजी माँ की गैर-मौजूदगी ने जहाँ छोटे को चुप्पा बना दिया था, बड़ा निकम्मा, और नाकारा निकला हालाँकि कहने के लिए किराए का ऑटो चलाया करता था, शराबी-कबाबी ऊपर से एक दिन एक एंग्लो-इंडियन लड़की को घर ले आया।

कहने लगा "बीजी, बहू है तुम्हारी, इसके साथ कोर्ट मैरेज की है।"

अब आप जानो जस्सो मासी तो जस्सो मासी ठहरी! फौरन उसे दरवाजा दिखाकर कहा - "फिटे मुँह तेरा, जित्थों लाया है, ओत्थे ही छड़के आ मोए!"

तीन दिन के भीतर मुहल्ले वालों और इक्का-दुक्का नातेदारों को इकट्ठा किया और फेरे डालकर बहू को घर ले आई। ढोल बजा तो पूरे मोहल्ले से ज्यादा जस्सो मासी नाची थी। दबी जनाब से बहू के धर्म पर छींटाकशी करने वालों की कमी नहीं थी पर जस्सो मासी ने यह कहकर सबका मुँह बंद कर दिया कि - "औरत की भला क्या जात और क्या धरम, पानी जिस भांडे में गया वैसा ही हो गया। लौटे विच पाओ तो लौटे वरगा, होर थाली विच पाओ ते थाली वरगा!" तो 'ग्लेडिस' अब 'लक्ष्मी' हो गई थी। और गली नंबर दो का क्या कहना, कुछ दिनों की कानाफूसी के बाद वही 'लक्ष्मी' सबकी लाड़ली बहू थी और सुबह दिन निकलते ही 'पैरी-पैना चाची जी' 'पैरी-पैना मासीजी" करते हुए उसकी कमर दोहरी हो जाती थी। यूँ चार दिन तो मजे में कटे फिर चंद दिनों में ही शाम को डगमगाते कदमों से लौटते पति की खस्ता हालत, कपड़ों से आती असहनीय दुर्गंध और खाली जेब ने कुल मिलाकर जो तसवीर खींची थी उसमें लक्ष्मी को भविष्य पर छाई अंधकार की छाया साफ दिखाई पड़ती थी और ये भी कि अब तो बस सास के सहारे दिन कटेंगे या खुद ही कमा-खाकर गुजर होगी। मायके में चर्च में जाकर जी भर रोई पर कही कोई रास्ता नहीं था। खुदा उसका नसीब लिखते हुए सारी स्याही खो बैठा था बस दूर तक काला रंग बिखरा नजर आता था।

हरे-पीले, लाल-नीले, बैंगनी-नारंगी, दुनिया की भागदौड़ और चकाचौंध से दूर भागते भूपी को रंगों में निजात मिलती थी। ये और बात है कि उसके मन में दुनिया को लेकर जो भी तसवीर बनती थी वो बहुत बेरंग थी। अपने कद को लेकर कोई ग्रंथि पाली हुई थी उसने या फिर ऊँचाई से उसका डर इसका कारण था, भूपी अक्सर उँची-लंबी आकृतियों से मुँह फेर लिया करता था। उसके अवचेतन में सदा एक लंबा, ऊँचा, ठूँठ

सा वृक्ष विद्यमान रहता था जो मन को कभी हरा-भरा होने ही नहीं देता था। ऐसा नहीं था उसने कोशिश नहीं की, पर उसकी तमाम कमजोर कोशिशें उस ठूँठ की ऊँचाई के सामने हार मानकर दम तोड़ गई। कभी-कभी भूपी को लगता था उसकी ऊँचाई हर रोज थोड़ा कम हो जाती है और ठूँठ हर रोज उतना ही बढ़ जाता है।

उसे लगता था किसी दिन यह ठूँठ उसकी पूरी लंबाई को लील लेगा और वह पूरा का पूरा इसी ठूँठ में समा जाएगा। उसका यह डर अमूमन दिन में जाने कहाँ सोया रहता और रात में धीरे धीरे उसकी नींद पर काबिज हो जाता। वह पसीने-पसीने हो जाता और अपने घुटनों को पेट में घुसाए, खिड़की से बाहर स्ट्रीट-लाइट को देखते-देखते सुबह का इंतजार करता। उसकी बेचैनी बढ़ जाती और रगों में दौड़ता लहू, मानो लहू नहीं किसी ज्वालामुखी से निकलता गरम लावा हो जाता जिसका बहाव उसे दुनियावी चहल-पहल से कही दूर ले जा पटकता। हैरत की बात यह थी कि जो भूपी पहले घंटों अपनी दुनिया में लौटने की कोशिश करता रहता था उसे अब ये दूसरी अँधेरी, भयावह दुनिया रास आने लगी थी। ये दर्द, ये तकलीफ, ये बेचैनी और ये डर उसकी आदत जो बन गए थे।

इधर ग्लेडिस उर्फ लक्ष्मी ने देखा उसके अलावा ससुराल में कुल जमा चार प्राणी हैं। पति आधे दिन बोतल भर के लायक कमाता है और सब कमाई दारू में उड़ा देता है। ससुर बीमार और लकवे से लाचार है। सास किसी फैक्टरी में काम करती है और देवर यानि भूपी मूर्तियाँ बनाता है। लोगों को लगा था बहू ईसाई है चार दिन में सब छोड़छाड़ कर अपने घर लौट जाएगी। उसके घरवालों ने भी कुछ इसी तरह की सलाहें उसकी झोली में डाल दी पर लक्ष्मी, जो अपने परिवार की सारी हिदायतों, आशंकाओं और भविष्यवाणियों को नजरअंदाज कर इस घर में आई थी, उसने इस रिश्ते को एक मौका देने का फैसला किया। दिन बीतते गए, पता नहीं ये फेरों पर खाई कसमों का असर था या सास का स्नेह, गरीब माँ-पिता की लाचारी की चिंता थी या घुटने टेकने से इनकार करती, गर्भ में आ गए एक अजन्मे शिशु की माँ की जिजीविषा थी कि लक्ष्मी-लक्ष्मी ही रही, फिर कभी 'ग्लेडिस' नहीं बनी तो नहीं बनी। गले में डला 'क्रॉस' 'ॐ' में बदल गया और उसने एक टिपिकल संस्कारी बहू की तरह सास की गृहस्थी सँभाल ली, वही रोजी-रोटी के लिए देवर की मदद करने लगी। सास को चूल्हे-चौके से छुटटी मिली, ससुर को दवाई समय पर मिलने लगी वही भूपी के अकेलेपन के दायरे में लगी सेंध ने कुछ दिनों के लिए उसे परेशान तो जरूर कर दिया था पर वक्त का पहिया जब मंथर गति से आगे सरकता गया तो धीरे-धीरे यह अतिक्रमण उसे भी रास आने लगा। और हुआ यूँ मूर्तियाँ अब गली नंबर दो की आवाजाही, एक-दूसरे की

चुगलियाँ करती औरतें और भूपी की खामोशियों से इतर भी कुछ आवाजें सुनने लगी थी।

'भाभी, पीला रंग कब खत्म हुआ होर हरा रंग किन्ना लाणा है..."

"भाभी, एक कप चा पीणी है..."

"भाभी, सिंह साहब का आदमी क्या बोल रहा था..." वगैरह-वगैरह...

भूपी ने मूर्तियाँ बनाने का काम छुटपन में ही सीख लिया था, कुछ अरसा काम एक दोस्त के घर काम किया और फिर जल्दी ही अपना काम शुरू कर दिया। रबर की डाई उर्फ साँचे में प्लास्टर ऑफ पेरिस का घोल डालकर उसे छत पर सुखाया जाता था। एक लाइन से बने 10 x 10 के चार कमरों को जोड़ कर बनी लंबी छत पर लाइन से मूर्तियाँ रखी रहती थी। एक कोने में एक छप्पर डला था जो अक्सर स्टोर रूम का काम करता था। मूर्तियाँ पूरी तरह से सूखने के बाद उन्हें रंगा जाता था। ये दिवाली से ठीक पहले का समय था।

तो बस चारों और लक्ष्मी-गणेश की मूर्तियाँ ही नजर आती थी। ऑर्डर के मुताबिक लक्ष्मी-गणेश की कुछ मूर्तियों को सुनहरा रंगा जाता था, कुछ को पूरा सिल्वर कलर किया जाता था और बाकी को विभिन्न रंगो में रंगा जाता था। थोड़े ही दिनों में लक्ष्मी ने सब सीख लिया था, कैसे सबसे पहले सिंहासन पर फिरोजी रंग, लक्ष्मी जी की साड़ी में लाल रंग, उनकी चोली में हरा रंग, गणेश जी के वस्त्रों में पीला रंग, हाथ पाँव में पीच रंग और गहनों को सुनहरा रंगा जाता था। यहाँ तक तो सारा काम दोनों मिलकर करते थे, बस इसके बाद का काम केवल भूपी ही करता था और यह था उनकी आँखों का चित्रण। मूर्तियों में प्राण फूँकने वाला मुहावरा यहाँ साकार हो जाता जब भूपी बड़े मनोयोग से, अपने सधे हाथों से उनकी आँखें चित्रित किया करता था। एक-एक कर मूर्तियाँ साकार हो उठती थी और लक्ष्मी उन्हें गिनते हुए ऑर्डर पूरा होने की खुशी में झूम उठती थी। इसके बाद ईटों के एक छोटे से चबूतरे पर रखकर उन पर वार्निश का स्प्रे किया जाता। जहाँ एक ओर मूर्तियाँ जीवंत हो चमक उठती वही उनके रंग भी पक्के हो जाया करते। लक्ष्मी के लिए ये मूर्तियाँ केवल मूर्तियाँ नहीं थी, घर का राशन थी, बच्चों की स्कूल की फीस थी, बिजली का बिल थी और मकान-मालिक का चाहे मामूली-सा ही सही, पर समय पर दिया जाने वाला किराया भी थी।

"ओए होये, अबे तू जमीन से बाहर आएगा या नहीं?"

"भूपी, तू तो बौना लगता है यार!!! हीहीही !!"

"अबे तू सर्कस में भर्ती क्यों नहीं हो जाता, चार पैसे भी कमा लेगा..."

"साले, तेरी कमीज में तो अद्धा कपड़ा लगता होएगा और देख तेरी पैंट तो चार बिलाँद की भी नहीं होगी।"

"ओए तुझे कौन अपनी लड़की देगा, बड़े होकर काके के न्याणे (बच्चे) खिलाने हैं तेनु..."

"भूपी, वर्माजी के ऑर्डर का कितना काम अभी बाकी है?"

लक्ष्मी ने गीले कपड़े से हाथ पौंछते हुए पूछा और भूपी फ्लैशबैक से बाहर आ गया। लगा जैसे किसी ने जंजीरों में जकड़ दिया था और वह दूर भाग जाना चाहता है। बदन पसीने-पसीने हो रहा था। साँस धौंकनी की तरह चल रही थी और कनपटियाँ जैसे शरीर के सारे लहू को अपने में समाये सुर्ख हो गई थी। लग रहा था जैसे वह मीलों लंबी दौड़-दौड़कर लौटा है।

"दो दिन होर लगने हैं।"

दोबारा पूछने पर भूपी के भावहीन चेहरे ने बिना नजर उठाए ही बुदबुदाया। लगा आवाज कही दूर किसी गहरी खाई से आ रही है। उत्तर रस्म अदायगी भर था और इन शब्दों से उसे कोई लेना-देना नहीं है। इतना तय था कि उस हाँफते जिस्म और लड़खड़ाती जनाब के लिए इससे कम शब्दों अपनी बात कहना शायद संभव न रहा होगा।

लक्ष्मी बच्चों को स्कूल भेज चुकी थी। ससुर नाश्ता करने के बाद आराम से सो रहे थे। उसका पति काके 'काम' पर जा चुका था और सास आज जमनापार एक जानकार के यहाँ गई थी। भूपी का काम अब अच्छा चल निकला था, लक्ष्मी का साथ मिलने से अब वह ज्यादा ऑर्डर ले सकता था। मूर्तियाँ तो पहले ही उसकी अभी मुँह से बोल उठने वाली लगती थी। किराए के उस छोटे से एक कमरे-रसोई वाले घर को माँ ने खरीद कर ऊपर भी एक बड़ा कमरा बना लिया था, जहाँ बहू लाने के वह सपने देखने लगी थी। लौटी तो चेहरे पर चिरपरिचित मुस्कान कुछ और गहरी हो गई थी और हाथ में बर्फी

का डिब्बा था जिसे उसने पूरे मुहल्ले में बाँटा था। भूपी ने दूर खड़े बिजली के खंबे को देखा तो उसके मुँह का स्वाद कसैला होता गया। पता नहीं क्यों वो आज कुछ ज्यादा ही लंबा लग रहा था। आँखें बंद होते ही ठूँठ एकाएक आसमान को छूता नजर आया। उसने घबराकर आँखें खोल दी। "आक थूsss" उसने बर्फी थूक दी और निर्विकार शून्य में ताकने लगा।

जब ठोकरें नसीब में हो तो भरे-पूरे संसार को भी एक छोटी सी चिंगारी लील लेती है। कुछ ऐसा ही सन 84 में सिखों के साथ हुआ था। 84 के प्रेत ने मुँह खोला और पंजाब के एक गाँव में रहने वाले सरदार दलजीत सिंह दो-दो गबरू जवान बेटों के साथ रोती-बिलखती पत्नी और 16 साल की जवान बेटी को छोड़ कर उसके मुँह में समा गए। सदमे ने उनकी पत्नी कुलवंत के होश छीन लिए और जब होश आया तो पाया दुनिया उजड़ चुकी थी, लालची रिश्तेदारों की मेहरबानी से अब न पास में जमीन थी और न सर पर छत। अपनी बच्ची को सीने से लगाकर दूर के रिश्ते के एक भाई के पास दिल्ली चली आई। अजीब आलम था, न गले से निवाला उतरता था और न ही रातें दिल में भरी बेचैनी को कुछ आराम दे पाती थी। उनकी रातें जैसे किसी अजाब की गिरफ्त में थी और उनके दिन इसे पहेली से सुलझाते हुए शाम के कदमों में दम तोड़ दिया करते थे, क्योंकि शरीर को न भूख सताती थी और न ही नींद बस अगर कुछ दिखाई देता था तो सोहणी की चढ़ती जवानी और अल्हड़ अटखेलियाँ।

ये बीसवाँ साल किसी भी लड़की के जीवन पर एक बसंती चादर की तरह छा जाता है जिसकी छाँव में हर लम्हा वसंती लगने लगता है। पिता अपनी सूरत और सीरत के साथ अपना डील-डौल भी सोहणी को सौंप गए थे। खासा लंबा कद, चौड़ा हाड़, दबा हुआ रंग और गदराया हुआ भरा जिस्म, साधारण शक्लों-सूरत के बावजूद सोहणी भीड़ में भी अलग नजर आती थी। कुछ साल बीत चुके थे, कुछ अरसा तो बाप-भाइयों की मौत का शोक उस पर हावी रहा, फिर दिल्ली की आबोहवा और नई बनी सहेलियों का साथ, मन आवारा परिंदे से उड़ने लगा और जवानी एक साथी मांगने लगी थी, जोबन का असर अपने शबाब पर था, और मन सपनों की गलियों में रोज सैर पर जाने लगा। उसका बेपरवाह अंदाज, जोर से खिलखिलाना और मस्तानी चाल, माँ के कलेजे में बरछी की तरह गड़ते थे। "हायो-रब्बा, मरजानी कितनी जल्दी बड़ी हो गई" अक्सर वे सोचा करती। उनका बस चलता तो उसकी उम्र का पहिया कब का थाम चुकी होती।

खैर, कुलवंत कौर ने कई जगह बात चलाई पर किसी को पढ़ी-लिखी लड़की चाहिए थी, किसी को ऊँचा घर-बार, कोई दाज में 10 तोले सोना चाहता था तो कोई बजाज का स्कूटर! बिन बाप-भाई की लड़की का ब्याह वो भी बिना दहेज इतना आसान भी नहीं

था। इससे पहले कि 'ऊँच-नीच' की आशंका से परेशान कुलवंत कौर और हलकान होती पड़ोस की एक पंजाबी महिला ने उन्हें जस्सो मासी के बेटे भूपी के बारे में बताया। ये महिला भी जस्सो मासी के साथ ही फैक्टरी में काम करती थी। जमना-पार के उस मोहल्ले में आज भी इतनी सदाशयता बाकी थी कि जवान लड़की माँ-बाप के साथ-साथ पड़ोसियों की भी साझी चिंता का कारण बना करती थी। लड़के का कमाऊ और शरीफ होना ही सबसे अधिक सुकूनदायक बात थी, उम्र में दस साल का फर्क तो बातचीत का विषय बनने लायक समझा ही नहीं गया।

'आहो जी, की फरक पैंदा ए?" फिर भाभी का ईसाई होना भी भला कोई बात है, "ये क्या कम है कि कोई 'डिमांड-शिमांड' नहीं है। बस दो जोड़ी कपड़ों में लड़की भेजने की बात है। अगले व्याह दा खरच उठान लई भी तैयार हैं।" डूबते को तिनके का सहारा काफी होता यहाँ तो साहिल खुद सामने आकर बाजू दे रहा था। कुलवंत कौर ने हाथ जोड़कर बात चलाने के लिए कहा, हालाँकि उनकी जागती रातों को अब एक नया काम मिल गया था। अब तो दिन-रात 'वाहेगुरु' से इस रिश्ते के सिरे चढ़ने की अरदास करते बीतता था। ऐसा नहीं था कि सोहणी को माँ की इस हालत का अंदाजा नहीं था, वो खुद दुआ करने लगी थी कि माँ की खोई नीदें उसे वापिस मिल जाएँ।

अमावस की रात अधिक काली हो जाती है अगर मन का अँधेरा बढ़ जाएँ। लगातार चौदह दिन ड्यूटी देने से थके, उकताए चाँद ने उस रात विश्राम के लिए बादलों की चादर ओढ़ ली और सोने चला ये सोचकर कि कल फिर से उगेगा नई उम्मीद और नए रूप के साथ! अँधेरे के लबादे ने आहिस्ता-आहिस्ता गली नंबर दो को भी अपने साये में ले लेने के लिए कदम बढ़ाया था पर स्ट्रीट लाइट ने उसके मंसूबों पर पानी फेर दिया। उस रात जस्सो मासी अपने कुछ परिचितों के घर कार्ड बाँटने गई हुई थी। लौटने में देर होने पर शायद वही रुक गई होगी। बड़े की शादी इतनी जल्दबाजी में हुई थी कि इस बार मासी कोई कोर-कसर नहीं छोड़ना चाहती थी। भूपी ने कुछ साल पहले मनोयोग से एक मूर्ति बनाई थी।

एक लड़की की वह सुंदर मूर्ति इतनी दिलकश लगती थी कि मासी ने उसे कमरे के कोने में रख छोड़ा था। भूपी ने उसे मनचाहे रंगों से सुंदर कपड़े और गहनों से सजाया था, उसकी देहयष्टि इतनी चित्ताकर्षक थी कि अक्सर देखने वालों का ध्यान खींच लेती थी। भूपी ने एकटक उस मूर्ति को निहारते हुए अपनी आँखें बंद की और बिस्तर पर लेट गया। रात के गहराने के साथ नींद भी गहराने लगी थी। देर रात अचानक भूपी को लगा मूर्ति, मूर्ति नहीं जीती-जागती एक लड़की है जो धीमे-धीमे मुस्कुरा रही है। उसकी आँखें इतनी सम्मोहक है कि उसके आकर्षण से बचने के किसी प्रयास के करीब

आ पाने का कोई चांस नहीं है। अमावस की उस काली रात में भी पूरा कमरा एक अनोखी रोशनी और खूशबू से सराबोर है। भूपी उठा और उसकी और बढ़ने लगा, मात्र तीन कदम के बाद वह उसके सामने था। करीब, बेहद करीब, उसके होंठो पर गहरी मुस्कान थी और उसकी साँसे अब भूपी के साँसों में एकाकार हो रही थी। भूपी ने महसूस किया, खून की गर्मी उसके पूरे जिस्म को गरमा रही थी। जिस्म जैसे आग की भट्टी की तरह तप रहा था। सम्मोहन से खिंचे आए भूपी ने उसे अपनी बाहों में भरना चाहा।

उसके तपते होंठ अभी उन सुर्ख मदमाते होंठो की ओर बढ़े ही थे पर ये क्या एकाएक मूर्ति का कद बढ़ने लगा, ऊँचा, ऊँचा और ऊँचा, इतना ऊँचा कि काफी ऊँची बनी उस कमरे की छत को छूने लगा। फिर जाने छत कहाँ गायब हो गई और औरत की लंबाई बढ़ती रही, उसकी मुस्कान अब विद्रूप हो गई, मानो बाहें फैलाए खड़े भूपी का मजाक उड़ा रही हो। मुस्कान अब ठहाकों में बदल गई और भूपी जैसे जड़ हो गया, वह न तो हिल पा रहा था और न ही बोल पा रहा था। उसे लग रहा था वह बौना और ज्यादा बौना होता जा रहा है। फिर अचानक अट्टहास करती वह मूर्ति ठूँठ में बदलने लगी, वही लंबा, निर्जीव, अकेला और डरावना ठूँठ! तभी मुर्गे की बाँग ने स्याहीचूस की तरह उसकी नीद का सारा कालापन सोख लिया और भूपी इस दुनिया में वापस लौट आया था।

बाहर अब भी स्ट्रीट लाइट की रोशनी थी, भूपी बिस्तर पर सिमटा हुआ था, उसका वजूद एक सूखे पत्ते की मानिंद काँप रहा था, साँसे फिर धौकनी की तरह चल रही थी। कोई देखता तो हल्के सर्द मौसम के बावजूद उसके चेहरे पर पसीने का असर साफ नजर आता! बमुश्किल भूपी देख पाया कि मूर्ति अब भी पहले की तरह वही कोने में चुपचाप खड़ी थी। शांत और बेजान!

"साली, जबान चलाती है, एक शबद होर निकाला तो जनाब खींच लूँगा। तेरे बाप की नहीं पीता हूँ, अपनी कमाई से पीता हूँ।"

लक्ष्मी दरवाजे पर बुत बनी खड़ी थी। घर की इज्जत सरेआम रुसवा हो रही थी और थर-थर दोनों बच्चे उसकी ओट में खड़े गली में हो रहा तमाशा देख रहे थे। शराब इनसान को कितना गिरा देती है, यह वह अग्नि है जिसमें प्यार-मोहब्बत, रिश्ते-नाते क्या घर के घर होम हो जाते हैं। काके शराब पीता था और शराब बदले में उस घर का चैन, सुकून, इज्जत और नेकनामी जाने क्या-क्या पी रही थी। काके रात भर हवालात की हवा खाकर आया है। एक दिन बीजी घर से बाहर रही और उसे चिलत्तर करने का

मौका मिल गया। जस्सो मासी ने उसका गरेबान पकड़ा और घसीटती हुई कमरे में ले गई। हवालात से आने के बाद भी उसने 'चढ़ा' ली थी और अब न उसे बीजी का परेशान चेहरा नजर आता था, न लक्ष्मी की लाल-सूजी आँखें नजर आती थी। जिसे अरमानों से ब्याह कर लाया था उसके चेहरे पर पुती श्मशान सी कालिख धीरे-धीरे उसकी जिंदगी में उतर आई थी, और वो था कि शराब के कतरों में अपनी बिखरी जिंदगी की किरचें चुन रहा था। दिन भर बेहोश पड़ा रहा, शाम होने पर बीजी के पैर पकड़कर माफी माँगने वाला काके क्या वही था!!! यकीन के चिथड़े बटोरने का आदी जितना यह परिवार था उतनी ही अब तक गली नंबर दो भी हो चली थी। दूधवाला, दूध ला रहा था, बच्चे गली में स्टापू खेल रहे थे और औरतें धूप जाने के बाद मंजी (खाट) खड़ी कर शाम के खाने का मेन्यू बतिया रही थी।

"गल सुन, यहाँ आ!"

"क्या बात है? क्या चाहिए, खाना बना रही हूँ।"

"तू मुझसे नाराज है ना?"

कोई उत्तर नहीं।

"अच्छा माफ कर दे यार, भोत शर्मिंदा हूँ, आगे से नइ पीऊँगा।"

कोई उत्तर नहीं।

"देख, तेरी सौं... पक्का!!"

लक्ष्मी ने एक नजर पति पर डाली पर कोई उत्तर नहीं दिया। मन ही मन बुदबुदाई "सब नौटंकी" और चुपचाप रोटी सेकने लगी। उसकी आँखों में जाने कितने आँसू थे जिनका पानी मानों सूखता ही नहीं था। जब-जब उसने सोचा उसके आँसू सूख गए हैं तब-तब कोरों से टपक जाते थे। जाने इन आँखों ने कितने समंदर जमा किए हुए थे कि खत्म ही नहीं होते थे। और कमबख्त जाने क्या बदा था उसके नसीब में! उसने पिछले चार दिन से काके से कोई बात नहीं की। उसने क्या, बीजी और बच्चों ने भी मौन साधा हुआ था और भूपी तो बात करता ही कब था। शाम को लक्ष्मी के मॉम-डैड उसे ले जाने आए थे। उसने सूटकेस निकाला और खामोश अपना सामान पैक करने लगी।

काके माफियाँ माँग रहा था, बीजी चुपचाप आँसू बहा रही थी। 'कमबख्त मोए' ने किसी लायक ही कहाँ छोड़ा था कि वे प्रतिरोध करती। लक्ष्मी बच्चों को साथ ले

निकलने ही वाली थी कि बीमार और बूढ़े ससुर ने हाथ जोड़ लिए। वे बोले तो कुछ नहीं पर उनकी सूजी आँखें और झुर्रियों से भरे जर्द चेहरे आँसुओं की आड़ी-तिरछी इबारत ने सब कह दिया। सूटकेस हाथ से छूट गया और वह अंदर दौड़ गई। कोई नहीं जानता था, काके को अपनी हरकतों पर वाकई अफसोस था या फिर कोई नौटंकी, पिछले चार दिनों से वह भी पीना छोड़कर रोज चुपचाप खाना-खाता और ऑटो लेकर निकल जाता था। उस दिन शाम को लक्ष्मी के हाथ में हजार रुपए रखे और कान पकड़कर खड़ा हो गया, तो उसने अविश्वास से अपनी हथेली पर नजर डाली, उसे लगा दुनिया के सारे सुख उस हथेली पर सिमट आए हैं उसने मुट्ठी भींचकर कलेजे से लगा ली, और आँखें भींच कर इस सुख को पीने लगी, कही इस अमृत का एक कतरा भी चूँ गया तो अनर्थ हो जाएगा। और उसका माही जिसके कलेजे से वह लगी थी चुपचाप उसके आँसू पोंछ रहा था। दो पश्चाताप के आँसू टपक के उन आँसुओं में मिले और लक्ष्मी को लगा जैसे तकदीर के आईने पर बरसों से जमी बदकिस्मती की मनहूस गर्द हट गई और नया दिन निकल आया हो।

"काला डोरया कुंडे नाल अड़या ओए, के छोटा देवरा भाभी नाल लड़या ओए" ढोलक की थाप पर जोर-जोर से व्याह के गाने-गाये जा रहे हैं। आखिरकार वो दिन आ ही गया। व्याह वाले दिन बेतरतीब दाढ़ी और ऊबड़-खाबड़ बालों के पीछे से भूपी का गोरा-चिट्टा चेहरा ऐसे दमक कर सामने आया था जैसे कालों बादलों के पीछे से चाँद निकल कर सामने आता है और लोग थे कि अपलक निहार रहे थे। कुछेक को तो भ्रम हो गया था कि ये भूपी नहीं कोई और है। सुंदर कपड़ों में बैठा हुआ वह किसी राजकुमार से कम नहीं लग रहा था, जस्सो मासी जिसकी बलाएँ ले रही थी। उसकी बेजान और निर्जीव आँखों का सूनापन, भाभी के लगाए काजल के पीछे कही छुप सा गया था। उन आँखों में कोई सपना नहीं था, शुष्क और खाली-खाली आँखों से इस सारे तमाशे को देखता भूपी भाभी की एक शरारत पर धीमे-से मुस्कुरा दिया। सोहणी के लिए उसकी लंबाई पता नहीं कोई मायने रखती थी या नहीं पर भूपी...। भूपी के मन में चल रहे अंधड़ों के आगे गाजे-बाजे की सब आवाजें बस शोर थी और इस शोर के सामने उसके मन की आवाज मानो नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह विलीन हो गई।

आज शादी को दो दिन बीत चुके हैं। सोहणी 'पैर फेरने' के बाद अभी भूपी के साथ वापस लौटी है। ससुराल से शादी के बाद पहली बार मैके जाने की इस रस्म में भूपी को सोहणी को साथ लाना था। वो जो ऑटो में सोहणी के साथ बैठकर आया है, क्या वह भूपी है? नहीं, वह तो उसकी परछाई है, भूपी तो सोहणी को देखने के बाद जाने किस बियाबान में खो गया था। उसका डील-डौल, उसकी लंबाई और उसका खिलंदड़पन,

सब भूपी को उसके करीब जाने से रोकने के हथियार साबित हुए। वो जितना करीब आती थी, भूपी उतना ही दूर होता जाता था। उसे लगता था सोहणी उससे दूर, बहुत दूर इतनी ऊँचाई पर खड़ी है जहाँ पहुँचने के लिए अगर वह अपने सारे अरमानों, सारी ख्वाहिशों, सारी तमन्नाओं को सीढ़ी में बदल दे तो भी उसे नहीं छू पाएगा। पर सौ टके का सवाल यह था क्या भूपी वह सीढ़ी बनाने का ख्वाहिशमंद था या अपने ही अंतरमन के अँधेरों से जूझता भूपी आज किसी की ख्वाहिश या आरजू करने की हिम्मत ही नहीं जुटाना चाहता था। यूँ भी चाहतों को राहों या राहत तक पहुँचने के लिए जिस जज्बे की, जिस इच्छाशक्ति की दरकार है वह भूपी के जीवन में नदारद है, उसने जीतने से पहले ही अपने हथियार नियति को सौंप दिए थे और चुपचाप नसीब के भँवर में खामोश बहता जा रहा था।

चारों और गहन अँधेरा है। भूपी एक रेगिस्तान में अकेला खड़ा है। दूर-दूर जहाँ तक नजर जाती है, उसके मन और जीवन में मौजूद जाने-पहचाने अकेलेपन का साम्राज्य है, चुप्पी का शासन है और खामोशी की सल्तनत है। इस रेगिस्तान की दहक और नीरवता क्या उसके मन की तपन से कही ज्यादा थी। उन कँटीली झाड़ियों में ज्यादा काँटे और चुभन हैं या फिर उसकी अंतरात्मा को छलनी कर देने वाले शूलों के घाव ज्यादा हैं। एकाएक रेतीली आंधियों ने उसे घेर लिया। भूपी को दूर-दूर तक कुछ नजर नहीं आ रहा है। एक काला साया उसके करीब नमूदार हुआ और उसे जकड़ने लगा। भूपी घबराकर उस साये से खुद को छुड़ाना चाहता है। वह लगभग जाम हो चुके हाथ-पाँवों को झटकना चाहता है, पर बेबस है, लाचार है। वह अपनी सारी ताकत को इकट्ठा कर पूरा जोर लगाता है और साए की गिरफ्त से खुद को छुड़ा लेता है। "आह!!!" ये आवाज सोहणी की है जो बिस्तर पर उसके करीब लेटी थी। उसका एक हाथ भूपी के सीने पर था और भूपी एक झटके में उसकी बाहों से खुद को छुड़ाकर कमरे से बाहर निकल जाता है। ये उसे क्या हुआ? उसका माथा जल रहा है और कंपकपाता शरीर बुखार से तप रहा है। ओह!!! न जाने क्यों, जिंदगी में आज पहली बार उसे शिद्दत से सिगरेट की तलब महसूस हो रही है।

दिवाली को बीते अब महीना बीत चुका है। सोहणी दस दिन बाद माँ के घर से लौटी है। जब गई थी तो उन दिनों भूपी की तबीयत कुछ ठीक नहीं, उसे आराम चाहिए था। इधर माँ के साथ पंजाब भी हो आई थी। 'सीजन' के बाद भूपी के पास इन दिनों ज्यादा काम नहीं होता। पूरा दिन या तो थोड़ी बहुत मूर्तियाँ बनाने में जाता है या फिर छत के कोने में बैठकर कागज पर आड़ी-तिरछी लकीरें निकालने में अपने वक्त की रेजगारी को बेभाव खर्च किया करता है। सीजन की थकान और आपाधापी के बाद मिले सुकून

के ये लम्हे उसे बेचैन करते हैं। उसका बस चले तो काम को कभी खत्म ही न होने दे। तभी एक कंकड़ उसके पैरों पर आकर लगा और विचारों के झंझावात का सिलसिला छन्न से टूट गया। सोहणी छत पर कपड़े सुखा रही है, न चाहते हुए भी भूपी का ध्यान उसकी ओर चला ही गया। गुलाबी पंजाबी सूट और पटियाला सलवार में कसा उसका गदराया जिस्म, चोटी में बँधे-लंबे काले बालों के नीचे झूलता सुनहरी परांदा, हाथों में चमकते चूड़े का लश्कारा (चमक), भूपी का दिल चाहा उसे ताउम्र निहारता रहे पर एकाएक उसकी नजरें सोहणी से मिली और वह देखते ही फिक्क से हँस पड़ी। भूपी चुपचाप सिर झुकाकर पेंसिल से खेलने लगा, भूपी की चुप्पी और सोहणी की शरारतें, कभी-कभी लगता है दो विपरीत प्रकृति वाले लोगों के बीच का धनात्मक और ऋणात्मक का फर्क उन्हें बार-बार करीब खींचता है।

दोनों ही अपने अंदर भावनाओं का अथाह समुद्र लिये होते हैं जो ऊपर से तो शांत दिखाई देता है लेकिन हलचल होने पर किसी सूनामी से कमतर नहीं होता है। सोहणी की पायल की छम-छम, चूड़े की खनखनाहट और उसकी मदहोश हँसी, होना तो यह था कि भूपी इस सूनामी में खामोश बह जाता, पर सोहणी अक्सर उसे किनारे पर शांत, उदासीन खड़े देखती। हालाँकि हर रात इस शांति की आड़ में वह उस सूनामी की लहरों में कितने ही थपेड़े खाकर वापस किनारे की ओर लौट आता था ये कोई नहीं जानता था।

शाम को भूपी वर्मा जी के यहाँ गया था। मूर्तियों का हिसाब अभी बाकी था, दूसरे व्याह में को खर्चा हुआ, उससे हाथ थोड़ा तंग हो गया था। वर्मा जी बाहर गए थे पर उन्होंने फोन पर रुकने की हिदायत दी। लौटते-लौटते काफी समय लग गया। नई मूर्तियों के सेंपल देखते-देखते समय कैसा बीत गया कुछ पता ही नहीं चला। जब भूपी घर लौटा तो आधी रात बीत चुकी थी, सारी बत्तियाँ बंद थी। थक-हार कर सोए घरवालों को उसने जगाना उचित नहीं समझा। भूपी चुपचाप अपने कमरे की ओर बढ़-चला। खिड़की से आती स्ट्रीट लाइट की थोड़ी रोशनी के कारण कमरे में बहुत अँधेरा नहीं था। सोहणी बिस्तर पर लेटी थी, उसकी आँखें बंद थी। भूपी कुछ देर खिड़की से उसे देखता रहा, फिर धीरे से बिस्तर की ओर बढ़ा। उसका दिल जोरों से धड़क रहा था, भूपी को लगा अगर सूखते हलक में फँस न गया होता तो शायद कलेजा बाहर आ गया होता। बिस्तर के करीब पहुँचकर वह अभी झुका ही था कि एकाएक उसकी निगाह कमरे के कोने में रखी मूर्ति पर पड़ी।

उसे लगा मूर्ति के चेहरे पर व्यंग्य भरी मुस्कान थी, वो खौफनाक रात उसके जेहन पर काबिज हुई और भूपी पलटा और कमरे से बाहर की ओर भागा। उस खौफनाक सूनामी

की लहरों में थपेड़े खाकर आज एक बार फिर वह खाली हाथ वापस किनारे की ओर लौट आया था। इसके बाद गली के नुक्कड़ पर अलाव के किनारे हाथ सेंकते हुए, वह बची हुई रात को तल्ख यादों की कैंची से काटते हुए अलाव में कतरे-कतरे होम करता रहा। ये कैसी आहुति थी जिसमें उसका कल, आज और कल जल रहा है, ये कैसी तपिश है जिनसे जिंदगी को रूबरू तो खड़ा कर दिया है पर उसे उसकी जिंदगी के ही करीब नहीं आने देती थी। फिर एक और मनहूस रात उसकी किस्मत के खाते में दर्ज हो गई थी। वक्त की झोली में ऐसी कई सर्द रातें भरी थी जो एक-एक कर जादूगर के टोपी से परिंदों की मानिंद निकल कर स्याह आकाश में गुम होने लगी।

हरिद्वार से मूर्तियों का बड़ा ऑर्डर मिला है। लक्ष्मी बहुत खुश है आज। इस बार कितनी ख्वाहिशें सिरे लगेगी इसका हिसाब लगाना बड़ा सुखकर है। जल्दी ही नए ऑर्डर का काम शुरू करना है। अब शायद कुछ हेल्पर भी रखने पड़ें। पर भूपी इस सारे हिसाब-किताब से परे है। उसे न खुशी से सरोकार है और न ही हिसाब-किताब की दरकार! उसे तो बस रंगों में डूब जाना है।

"जी, मैं केया, त्वानु चा दे नाल कुछ चाइदा है?"

उसने गर्दन उठाई तो एकाएक घबराकर सर झुका लिया, सोहणी चाय के साथ नाश्ते की प्लेट थामे खड़ी थी। उफ्फ, ये लंबाई कितनी खौफनाक शय है!!!

"पकौड़े..."

सोहणी ने उसके पैर को धीरे से अपने पैर से दबा दिया। पैर खींचते भूपी ने संयत होते हुए चाय का कप थाम लिया। बढ़िया, चाय अच्छी है, एक सुड़की के बाद उसका ब्रुश तेजी से चलने लगा, भाभी की नजर बचाकर सोहणी ने एक पकौड़ा उसके मुँह में ठूँस दिया और प्लेट वही रखकर हँसते हुए वहाँ से चली गई। दूर जाती सोहणी को एकटक निहारता भूपी उसे जाते हुए देखता रहा। फिर मुँह चलाते हुए नजर हटाकर बिजली के तार पर बैठे पंछियों को देखने लगा, पंछी आज भी ऊँचाई पर बैठे चहचहा रहे थे, पर जाने क्यों आज पकौड़े का स्वाद उसे कसैला नहीं लगा। उसने एक और पकौड़ा उठाकर मुँह में डाला और ब्रश चलाने लगा।

सोहणी भाभी के पास बैठी हन्नी के साथ गिट्टे खेल रही है। अचानक गिट्टे उछालना छोड़कर वह भाभी से पूछती है,

"भाभी, ए कुछ बोलते नहीं। बहुत चुप-चुप रहते हैं। क्या हमेशा से..."

भाभी बोलती रही और सोहणी जैसे कोई पेंसिल थामे शब्दों को मन के कैनवास पर उतारती रही। जब वह तसवीर मुकम्मल हुई तो सोहणी ने पाया, वह बचपन से अपने अकेलेपन से जूझते हुए उदास भूपी का रंगहीन चेहरा था, जिसमें सोहणी को जीवन और प्रेम के रंग भरने थे। वह जान गई थी खामोशी भूपी की ढाल थी और एकांत उसका सहारा, और सोहणी ने सबसे पहले इन्ही पर निशाना साधना था। वह उसके एकांत के व्यूह में प्रवेश द्वार ढूँढ़कर उसकी खामोशी को भंग करने का अरमान रखती थी और इसका कोई मौका छोड़ना उसे गवारा नहीं था। उसने तय कर लिया था वह उसके मन पर सातों तालों को तोड़कर भी उसके दिल में अपना आशियाँ बनाएगी। उसके शर्मीलेपन, सादगी और उसकी मासूमियत ने सोहणी के दिल में घर बना लिया। जिस तरह उसने सोहणी का हाथ थाम कर उसे अपनाया है, उसकी माँ के चेहरे पर संतोष और सुख के सतरंगी रंग उस चितेरे की बदौलत ही तो हैं जिसने उसे बरसों की खोई नींद से मिला दिया।

काके अब रोज रात में ऑटो चलाता है और दिन में अपने कमरे में पड़ा खर्राटे भरता है। शराब को अब छूता भी नहीं और पर बीजी ने उसके यार-दोस्तों की ऐसी क्लास ली कि वे ऐसे गायब हुए मानों गधे के सिर से सींग। जस्सो मासी अब रसोई में नहीं सोती। रोज बड़ी बहू और बच्चों के पास ही अपनी मँजी लगा लेती है। सोहणी चपल, चंचल, उद्दाम वेग से बहती हुई एक अल्हड़ पहाड़ी नदी है जो सारे बाँध तोड़कर बह निकलना चाहती है। वही भूपी वह शांत और गंभीर सागर है, जिसमें समा जाने में ही नदी अपने जीवन की सार्थकता देखती है। जिस अनदेखे, अनचाहे मीत पर जवानी की सौगात लुटा देने के सपनों ने बीसवें साल में हजारों तमन्नाएँ की थी उसका चेहरा अब धुंधला नहीं है। सारी धुंध छँट गई है। अब वह जानती है उसे, पहचानती भी है, उसे लगता है जैसे वही उसका जन्मों से मीत है, जिसका साथ ही उसके लिए जन्नत है। प्रेम जब आत्मा का स्पर्श करता है तो पुरुष अधिकार चाहता है और स्त्री प्रेम में समर्पित होना चाहती है। सोहणी अपनी मोहब्बत के लिबास पर चाहतों के सलमे-सितारे टांकना चाहती है, आग के दरिया में डूबकर पार होना चाहती है। अपनी मोहब्बत के साये में सुकून से जिंदगी बिताने का अरमान ही उसकी आरजू था और यही उसका ख्वाब भी बन गया था।

स्ट्रीट लाइट की पीली रोशनी खिड़की से कमरे के भीतर आ रही है और पूनम की वह खूबसूरत रात मानों एक दुल्हन की तरह आई है, जिसके मखमली दुशाले पर जड़े हुए अनगिनत सितारे कायनात को रोशन कर रहे हैं। अपनी जवानी पर इठलाता चाँद उसका महबूब है, जो पल-पल उसे निहारकर खुशी से किरणों की बारिश कर रहा है।

गली नंबर दो उस रात में भी उतनी ही रोशन और जगमग है जितनी सोहणी के मन में हिलोरें लेती कामनाएँ हैं। सोहणी इस घर के कण-कण को अपना रही है, अपनी जड़ों से उखड़ा वह कोमल पौधा, इस अजनबी मिट्टी में अपनी जड़ें जमा रहा है। उसे भूपी से ही नहीं उससे जुड़ी हर बात से प्यार है, वह सचमुच उसकी संगिनी बनना चाहती है। आज उसने भी दिन भर भाभी से रंग करना सीखा है।

भूपी के ब्रश को हाथ में लेते हुए जिस सिहरन को उसने तन-बदन में महसूस किया, वह उस सिहरन की ही सहेली मालूम हुई थी जो सोहणी ने उसे पहली बार छूकर महसूस की थी। भूपी आज दिन भर उसके करीब था, उन्होंने साथ खाना खाया और आज उसने पहली बार भूपी की आँखों में प्यार का वह उमड़ता सागर देखा जिसकी एक झलक देखने की आस उसे बेचैन किए हुए थी। उसके स्पर्श को यादकर अपने सुख में मग्न सोहणी कहाँ जानती थी, ये सिहरन जैसे उसकी तन की नहीं मन की भी सिहरन थी, जिसने अवसाद की सौ परतों के नीचे दफ्न उस सुसुप्त आत्मा को भी सहला दिया था जो जाने कब से पत्थर की मूर्तियों के बीच रहते-रहते रफ्ता-रफ्ता एक बेजान मूर्ति में बदल रही थी। यह बरसों से बंद पड़े आशाओं के उस द्वार पर हुई एक बहुप्रतीक्षित किंतु अप्रत्याशित आहट थी जिस पर जाने कब से निराशा का जंग खाया ताला झूल रहा था। उस द्वार की चरमराहट से भूपी कब तक अनजान बना रहेगा, ये रात की भी चिंता का विषय था और गली नंबर दो की भी।

भूपी दीवार से सर टिकाए हुए चाँद को देख रहा है, तभी नीचे के कमरे की खिड़की से दीवार पर पड़ रही रोशनी में दो साए एकाकार होते दिख रहे हैं। भूपी को अजीब सी बेचैनी महसूस हो रही है। उसने नजरें वहाँ से हटा ली। शायद आज काके देर से काम पर निकलेगा। भूपी चुपचाप कमरे में आकर लेट गया है। उसका चित्त शांत नहीं है और नींद आँखों से दूर, बहुत दूर सैर पर निकली है। ये चाँद और आँखें, दोनों की साजिश खूब रंग ला रही थी।

"चिट्टा कुकड़ बनेरे ते, काशनी दुपटटे वालिये, मुंडा सदके तेरे ते..."

अपने काशनी (बैंगनी) दुपटटे को लहराती, गुनगुनाती उस चंचल, चपल हिरनी ने जब कमरे में प्रवेश किया।

वह नहीं जानती कि भूपी सो रहा है या जाग रहा है। हाँ, पर वह जाग रही है, चाँद जाग रहा है, रोशनी में नहाई गली जाग रही है और जाग रही है उसकी तमाम उदात्त कामनाएँ। नदी का सागर के प्रति समर्पण उसका स्वभाव है और उस भाव की सुखद परिणति उसका ध्येय। इसके लिए रास्ते में आने वाली हर बाधा, बाँध को तोड़कर भी

वह बढ़ती जाती है, निरंतर, गतिशील। तो पूरे चाँद की उस एक रात में सब अपने लक्ष्य की बढ़ रहे थे आहिस्ता-आहिस्ता। नदी बेखौफ बढ़ रही थी कि उसे सागर से मिलना था, वही सागर चाँद के आकर्षण में समस्त गुरुत्वाकर्षण को समेटे हर पल उस आसेब से लड़ रहा था जो लगातार उसे अपने और खींच रहा था। सोहणी ने उसके करीब जाकर धीरे से उसे छुआ। अब वो भूपी के बेहद करीब थी, उन दोनों के बीच पसरी वह सर्द, अनजान रात धीमे-धीमे एक सुंदर सवेरे की तलाश में अपने मुसलसल सफर पर थी। धीरे-धीरे रात पिघलने लगी थी, जिस्म की गर्मी की तपन के आगे धधकते शोले भी शीतल झोंके मालूम होते हैं। इसके बाद उनके बीच उस रात के लिए भी कोई जगह नहीं रही, पिघलती रात उनके जिस्म में समा गई थी और वे दोनों एक दूसरे में! सोहणी के प्यार और समर्पण की कशिश ने सम्मोहन के टूटने का कोई भी मौका पास नहीं आने दिया और आखिरकार वही हुआ जिसके होने के विषय में लगाए जा रहे गली नंबर दो के सारे अनुमान अपने शिखर पर थे, जिसका होना कल तक सुगबुगाहटों में बुना जाता था, जाने कब से नियति की तारीखों में दर्ज किया जा चुका था। इससे पहले कि रात उस चमकदार, धवल सवेरे की गोद में बेसुध होती, चंचल नदी का पानी सारे बाँध तोड़कर सागर की ओर बह निकला, वही सागर ने भी स्वयं को ज्वार के हाथों सौंप दिया। समर्पण के रंग ने उस रुपहली रात को एक नए रंग में रंग दिया यकीनन यह पहले प्यार का रंग था जो इस दुनिया में मौजूद हर रंग से कही ज्यादा दिलकश और पुरअसर था।

भूपी ने आँखें खोलकर सोहणी के चेहरे की ओर देखा, वह अब भी उसकी बाँहों में थी, जीती-जागती, मुस्कुराती, लजाती और अपने सुख को महसूसती सोहणी! एक पल को उसे लगा मानो चाँद में सीढ़ियाँ लग गई और खिड़की से दूधिया चाँदनी उसकी बाँहों में उतर आई है। पर ये क्या, ठीक उसी पल उसने घबराकर कमरे में मौजूद मूर्ति की ओर देखा, कमरे के भीतर पसरी दूधिया सफेदी में मूर्ति हमेशा की अब भी उसी कोने में रखी थी और छत भी वही मौजूद थी जहाँ उसे होना चाहिए था। कही कुछ न बदला था, सब वैसे ही था जैसे पहले कभी न हुआ था, जैसा होना चाहिए था। सोहणी ने उसके सीने पर आहिस्ता से अपना सिर टिका दिया और ठीक उसी क्षण भूपी के मन में तना बरसों पुराना वह ठूँठ जैसे लरज गया था, दरक गया था, चटक गया, और ये क्या, आज उसकी ऊँचाई इतनी अधिक नहीं कि भूपी भय से उसके कदमों में अपना सर झुका दे। जिंदगी में पहली बार आज भूपी को ठूँठ से कोई डर नहीं लगा। फिर नींद ने उसे अपने आगोश में यूँ ले लिया था जैसे माँ थपककर किसी बच्चे को सुला देती है।

सुबह हो चुकी है। रात अकेली नहीं गई, अपने साथ जाने कितने बरसों के दुख, अवसाद, अकेलेपन और अँधेरे को समेटे विदा हुई है। सूरज की आहट से अभी-अभी जागी गली नंबर दो ने अंगड़ाई लेकर अपनी आँखें खोल दी हैं। आज का दिन सबके लिए कुछ खास है और ये सवेरा सबके लिए कोई न कोई सौगात लेकर आया है। परिवार का जल्द ही मूर्तियों की फैक्टरी शुरू करने का विचार है, जस्सो मासी आज से अपनी फैक्टरी जाना छोड़ रही है, आखिर उसके कमाऊ पूत अब अपनी-अपनी गृहस्थी सँभालने लायक हो गए हैं और वह अब चैन से धूप में मँजी डालकर मासड़ (अपने पति) से बतियाते हुए, अलसाते हुए अमरूद और मूँगफलियाँ खाते हुए, उनके बच्चे खिलाना चाहती है। क्या कहने!!! इस सुख पर तो सात स्वर्ग भी सदके। काके की लोन की अर्जी मंजूर हो गई है।

आज घर में अपना ऑटो आएगा, मुस्कुराहटें बिखेरती लक्ष्मी पूजा की थाली सजा रही है। खिड़की के बाहर सोहणी तुलसी को पानी दे रही है, हर बूँद के साथ रिस रहा है भूपी के मन का डर, तिरोहित होती जा रही हैं वे तमाम काली भयानक रातें जो सालों से उसे कैद किए हुए थी। एकाएक उसे महसूस हुआ कि रफ्ता-रफ्ता अपनी ऊँचाई खो चुका वह ठूँठ पिघल रहा है। ऐसा सवेरा उसके जीवन में पहले कभी नहीं आया था और उस सुबह उगते सूरज ने उदास चाँद से जुड़े उसके सभी मनहूस रिश्तों की कालिख को अपनी सुनहरी किरणों के रंग से धो दिया था। भूपी ने आँखें बंद की तो पाया ठूँठ नहीं उसकी जगह लहराता हुआ एक हरा पौधा है, जिसमें नन्ही-नन्ही कई कौंपले उग आई हैं। नन्ही-नन्ही कोंपलें, हरी-हरी कोंपलें, उसके और सोहणी के अरमानों से सजी कोंपलें। सचमुच, उन सबके जीवन में सुबह हो चुकी है।

https://www.hindiadda.com/galee-number-do/